International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 7, July- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

भारतीय समाज व संस्कृति का राष्ट्रीय संदर्भ

डॉ अवधेश कुमार पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग

बुद्ध पीजी कॉलेज, कुशीनगर

भारतीय समाज एवं संस्कृति अत्यन्त प्राचीन व जटिल है। इसके पास वह सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत है जो इसे अप्रवासी आर्यों से तथा मूल द्रविड़ों और आक्रमणकारी सभ्यताओं से प्राप्त हुई। भारत की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विविधताएँ यहाँ की ग्रामीण व शहरी निवास की दशाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रोम, यूनान, सुमेर, वैबीलोनिया आदि की संस्कृतियाँ समय के प्रवाह में कहाँ यह गई, मालूम नहीं, जो कुछ रह गया, वह केवल इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। परन्तु भारतीय समाज व संस्कृति आज भी जीवित है। यह जीवित है अपनी विशिष्टताओं के कारण। राधाकमल मुकर्जी (Radhakamal Mukherji) ने लिखा है ,अन्य समाजों की तुलना में भारतीय समाज की विशेषता यह है कि हमारा समाज बाह्य कानूनों, नीतियों और बन्धनों पर सबसे कम निर्भर है। भारत में तो प्रथा, परम्परा तथा अन्य संस्थागत व्यवस्था के द्वारा ऐसे सच्चरित्र व्यक्तियों के निर्माण करने का प्रयत्न हुआ]जो सबके जीवन में समभागी होने के कारण और सामान्य मानवों से तादात्म्य स्थापित कर लेने के कारण अपने प्रभाव से उत्कृष्ट और न्यायोचित समाज रचना करने में समर्थ होते हैं।

भारतीय समाज एक अत्यन्त प्राचीन समाज है एवं अपने आपमें जटिलता लिए हुए हैं। इसका इतिहास लगभग पाँच हजार वर्षों का है। भारतीय धर्म]दर्शन]कला]अर्थव्यवस्था]परिवार व विवाह आदि व्यवस्थाएँ भारतीय सामाजिक इतिहास में महत्वपूर्ण कही जा सकते हैं। यह प्रयोग प्राचीनकाल से ही आरम्भ होता है। जिस समय विश्व का अधिकांश मानव अज्ञानता के अधकार में पाशविक जीवन व्यतीत कर रहा था]उस समय भारतीय समाज का साहित्य, कला, धर्म तथा दर्शन विकास की ओर निरन्तर बढ़ता जा रहा था। इसलिए भारतीय समाज ने विश्व के समाज वैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

साधारणतया लोग समाज शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के संगठन, सामाजिक या धार्मिक समुदाय, जाति या प्रजाति आदि के सन्दर्भ में कर लिया करते हैं। जैसे-दलित समाज]ग्रामीण समाज]हिन्दू समाज]आर्य समाज आदि। ऐसा प्रयोग समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से वैज्ञानिक नहीं है।समाज की अवधारणा को अन्य सामाजिक विज्ञानों में भी उजागर किया गया है। जैसे-अर्थशास्त्र में समाज का अभिप्राय एक खास तरह की आर्थिक क्रियाएँ करने वाले व्यक्तियों के आर्थिक समूह से समझा जाता है। राजनीतिशास्त्र में समाज की अवधारणा को एक राजनीतिक समूह के रूप में स्पष्ट किया जाता है। मनोविज्ञान में समाज का अभिप्राय मानसिक अन्तर्क्रियाओं को करने वाले समूह से है।

मानवशास्त्र में समाज का अर्थ जनजातीय समुदायों से लगाया जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह अर्थ वैज्ञानिक नहीं है। समाजशास्त्र में समाज को सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में स्पष्ट किया गया है।

आर. एम.मैक्ईवर एवं सी.एच.पेज ने समाज को बहुत ही स्पष्ट रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार, समाज रीतियों और कार्य प्रणालियों, अधिकार और पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों और उप-विभागो, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों एवं स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था है। इस निरन्तर परिवर्तित होने वाली जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। इस परिभाषा से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है-(i) समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। (ii) इस व्यवस्था का निर्माण रीतियों, कार्यप्रणालियों, अधिकार, पारस्परिक सहायता,समूहों, नियन्त्रणों व स्वतन्त्रताओं से होता है। (ii) यह व्यवस्था परिवर्तनशील है।आज अधिकांश समाजशास्त्री समाज को सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में ही स्वीकार करते हैं। सामाजिक सम्बन्धों का आधार सामाजिक अन्तःक्रिया (Social Interaction) है। यह अन्तःक्रिया तीन स्तरों पर होती है (i) व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य, (ii) व्यक्ति-समूह के मध्य और (iii) समूह-समूह के मध्य। इन्हीं अन्तः क्रियाओं के फलस्वरूप जिन सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण होता है, उसे समाज कहा जाता है।

एस. सी. दुबे ने अपनी महत्वपूर्ण प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय समाज' में भारतीय समाज के आधारभूत पहलुओं को विवेचित किया है। इनका कहना है, "भारतीय समाज बहुत पुराना और अत्यधिक जटिल है।' भारतीय समाज बहुत पुराना है। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है, प्रचलित अनुमान के अनुसार पाँच हजार वर्ष पूर्व की पहली ज्ञात सभ्यता के समय के आज तक लगभग पाँच हजार वर्षों की अवधि इस समाज में समाहित है। इस लम्बी अवधि में विभिन्न प्रजातीय लक्षणों वाले और विविध भाषा-परिवारों के अप्रवासियों की कई लहरे यहाँ आकर इसकी आबादी में घुलमिल गयीं और इस समाज की विविधता, समृद्धि और जीवंतता में अपना-अपना योगदान दिया।भारतीय समाज अत्यधिक जटिल है। यहाँ अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों साथ-साथ रह रहे हैं। यह इसकी जटिलता का ही प्रमाण है। इस सन्दर्भ में दुबे ने लिखा है, "समकालीन भारत में सामाजिक क्रमविकास के कई अलग-अलग स्तर साथ-साथ मौजूद हैं, जैसे- आदिकालीन शिकारी और भोजन संग्राहक झूम खेती करने वाले किसान जो हल-बैल से जुताई करने के बजाय आज भी कुदाली या आद्य हल का इस्तेमाल करते हैं, विभिन्न प्रकार के घुमन्तू, एक ही जगह बसे किसान जो खेती के लिए हल का इस्तेमाल करते हैं, दस्तकार और प्राचीन वंश परम्परा वाले भूस्वामी तथा अभिजात वर्ग दुनिया के अधिकतर प्रमुख धर्म-हिन्दू इस्लाम, ईसाई और बौद्ध-यहाँ है और इनके साथ आस्था और कर्मकाण्ड की दृष्टि से अलग-अलग ढंग के सम्प्रदाय और पंथ भी यहाँ है जो विस्मय में डाल देते हैं। इन सबके साथ आधुनिक अकादमिक अफसरशाही औद्योगिक और वैज्ञानिक अभिजन को भी जोड़ देने से हम देखते हैं कि यहाँ अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों साथ-साथ रह रहे हैं।भारतीय समाज से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर दुबे ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इनमें प्रमुख है-विविधता और एकता, हिन्दू समाज की विशेषताएँ, वर्ण और जाति,

परिवार, विवाह और नातेदारी व्यवस्था, ग्रामीण तथा नगरीय सन्दर्भ, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध और परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ आदि।

संस्कृति व्यक्ति व समाज से गहरा सम्बन्ध रखती है। यह मानव की अमूल्य सम्पत्ति है जिसके बल पर मानव अपनी क्षमताओं का विकास करता है, फिर जीवन को नित्य परिमार्जित, विकसित एवं सुसज्जित करता रहता है। संस्कृति समाज की आत्मा है। जब तक समाज है, तब तक संस्कृति है। संस्कृति का उद्गम विकास एवं परिवर्तन समाज पर निर्भर है। संस्कृति समाज का सारतत्व है. उसका गुण है, उसे विशिष्टता प्रदान करती है।समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी संस्कृति में जन्म लेता है। संस्कृति व्यक्ति को विरासत में मिलती है। व्यक्ति का पालन-पोषण, आचार-विचार, रीति-रिवाज, धर्म-दर्शन आदि संस्कृति से निर्धारित होता है। इसी क्रम में व्यक्ति की क्षमताओं का विकास होता है। शाब्दिक दृष्टि से विचार करने पर संस्कृति शब्द संस्कार से बना है जिसका अर्थ उत्त प्रक्रिया से है जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के आचरण और विचार को परिमार्जित करे। किन्तु, समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में संस्कृति की परिभाषा व्यापक रूप में की जाती है।संस्कृति की सबसे प्राचीन एवं मशहूर परिभाषा टायलर (Tylor) की है। इन्होंने लिखा है,संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान विश्वास, कला, नैतिक आधार, कानून, प्रथा और ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश होता है जिसे मानव समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

हर्सकोविट्ज ने लिखा है, "संस्कृति पर्यावरण का मानव-निर्मित माग है।""Culture is the man-made part of environment."|इस कथन से स्पष्ट है कि पर्यावरण का वह भाग जिसका निर्माण मानव ने किया है, संस्कृति है। एस. सी. दुबे (S. C. Dubey) के अनुसार, "सीखे हुए व्यवहार प्रकारों की उस समग्रता को, जो किसी समूह को वैशिष्टय प्रदान करती है, संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है। इस कथन से दो तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। पहला, संस्कृति सीखी जाती है। व्यक्ति परिवार, पड़ोस तथा अन्य समूहों के सम्पर्क में इसे सीखता है। दूसरा, प्रत्येक समाज की अपनी अलग संस्कृति होती है। यही कारण है कि समाज एक दूसरे समाज से भिन्न होता है।इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानव-समूह के जीने का ढंग संस्कृति है तथा इसका निर्माण मानव ने किया है। इसलिए संस्कृति के अन्तर्गत मानव द्वारा निर्मित भौतिक (पेन, मकान, कार, वस्त्र, आभूषण आदि) और अभौतिक (धर्म, कला, प्रथा, विश्वास, विचार आदि) वस्तुएँ आती हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इसका इतिहास हजारों वर्षों का है। रोम, बेबीलोनिया, मिस्र एवं यूनान की संस्कृतियाँ भारत की तरह प्राचीनतम थीं, परन्तु धीरे-धीरे विश्व की वे संस्कृतियाँ लुप्त हो गई। वहीं भारतीय संस्कृति इतने वर्षों के बाद, इतने आक्रमणों के बाद भिन्न-भिन्न प्रजातियों व बाहरी संस्कृतियों के आगमन

के बाद आज भी उन्नत स्थिति में है। इसकी उन्नता का मूल कारण समन्वय व समायोजन है।भारतीय संस्कृति का मूल आधार आध्यात्मिकता है। अतः भारतीय संस्कृति की विशेषताओं में मूलतः संस्कृति के अभौतिक तत्वों का समावेश है|

समकालीन भारतीय समाज का तात्पर्य स्वतन्त्र भारतीय समाज से है। 15 अगस्त, 1947 भारतीय इतिहास का वह दिन है, जिस दिन भारत अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुआ। फिर भारत के लिए एक नया संविधान बना जो 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। संविधान की आत्मा बना स्वतन्त्रता, समानता, न्याय और भ्रातृत्व। संविधान में कहा गया है कि राज्य किसी भी व्यक्ति के साथ किसी भी आधार- धर्म, जाति, लिंग, रंग, जन्म आदि पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा। स्वतन्त्रता के बाद जिन आधारों पर भारतीय समाज को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया, उसका पूर्व से कोई लेना-देना नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि समकालीन भारतीय समाज के विवेचन से होगी। भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र कहा गया है। अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) की सर्वप्रसिद्ध परिभाषा इस प्रकार है, लोकतन्त्र शासन का वह रूप है जिसमें जनता का जनता के द्वारा और जनता के लिए शासन हो।"Democracy is a government of people, by the people and for the people." इस कथन से लोकतन्त्र की तीन विशेषताएँ प्रकट हैं-(1) जनता का प्रतिनिधित्व (2) जनता के हितों का रक्षण और (3) जनता के प्रति उत्तरदायित्व। इस प्रकार समकालीन भारत में लोकतन्त्र के अन्तर्गत सर्वसाधारण जनता ही सरकार की स्थापना करती है, सरकार सर्वसाधारण के हितों की रक्षा करती है और उनकी इच्छानुसार ही पदासीन रहती है।समकालीन भारतीय समाज लौकिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है। धर्म और धार्मिक विश्वास की जगह मानवीय, सामाजिक, व्यावहारिक एवं तार्किक व्याख्या लौकिकीकरण है। एम. एन. श्रीनिवास (M. N. Srinivas) ने लिखा है, लौकिकीकरण शब्द का अभिप्राय है कि जो पहले धार्मिक माना जाता है, वह अब वैसा नहीं माना जाता।"आज भारत में धर्म से जुड़ी मान्यताओं में कमी देखी जाती है। धार्मिक, प्रथागत व परम्परागत व्यवहारों में धीरे-धीरे तार्किकता, मानवीयता और व्यावहारिकता का विकास हुआ है। लौकिकीकरण की चार विशेषताएँ हैं- (1) धर्मवाद का ह्रास (2) तार्किकता, (3) विभेदीकरण और (4) वैज्ञानिक दृष्टिकोण|न्यायिक समानता का अर्थ यह है कि कानून की दृष्टि में सभी नागरिक समान हों और सभी नागरिकों को कानून का समान संरक्षण प्राप्त हो। इसके अन्तर्गत पाँच बातें आती हैं-(1) कानून के समक्ष समानता, (2) कानून का समान संरक्षण. (3) कर्त्तव्यों के प्रसंग में समानता, (4) करों के निर्धारण में समानता, और (5) विवेकसंगत आधार पर भेदभाव मान्य। भारतीय राजव्यवस्था में अनुसूचित जातियों को जो विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं, वे इसी श्रेणी में आती हैं। वर्ग विशेष को प्रदान की गई इस प्रकार की विशेष सुविधाओं को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे कानून के समक्ष समता के सिद्धान्त के विरुद्ध है। समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा का प्रसार तेजी से हो रहा है। 1951 में 29.50 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे, जो बढ़कर 2001 में 65.38 प्रतिशत हो गए। 2001 की जनगणना के अनुसार पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत 75.85 तथा महिलाओं में 54.16 प्रतिशत है। भारत में सर्वाधिक साक्षरता 90.92 प्रतिशत केरल में है। स्वतन्त्रता के पूर्व जहाँ शिक्षा मूल रूप से पुरुषों व उच्च जातियों व सम्भ्रान्त परिवारों से सम्बन्धित रही,

वहीं आज यह स्त्रियों व निम्न जातियों व साधारण परिवारों से भी जुड़ गयी है। आज स्कूल-कॉलेजों-विश्वविद्यालयों-यांत्रिकी संस्थानों में सभी लिंग, जाति, धर्म व वर्ग के लोगों को देखा जाता है।समकालीन भारतीय समाज में लोकतन्त्र की स्थापना, लौकिकता का विकास, न्यायिक समानता और शिक्षा के प्रसार ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण में सहायता प्रदान की है। भारत विभिन्नताओं का देश है। यहाँ बहुत से धर्मों, जातियों, परम्पराओं, भाषाओं, रीति-रिवाजों आदि के लोग हैं। व्यक्ति के ज्ञान के विकास के क्रम में एक भावना यह बनी है कि हम एक भारतीय हैं। भारतीय के रूप में उनके दायित्व व कर्त्तव्य बनते हैं। ये भावनाएँ सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण में सहयोगी हैं।ब्रिटिशकाल के भारत की आर्थिक विकास की तुलना स्वतन्त्रता के बाद से की जाय, तो आज हम पाते हैं कि आर्थिक विकास एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। आजाद भारत की नवीन अर्थव्यवस्था में 58 वर्षों में काफी सुधार हुआ। आज हमारे पास लाखों की संख्या में उद्योगों के आधुनिक उपक्रम हैं, उद्योग सम्बन्धी व तकनीकी कुशलताओं का अच्छा भण्डार है, भिलाई व राउरकेला जैसी बड़ी जन-योजनाएँ हैं, हीराकुण्ड जैसे बड़े बाँध हैं, विकासशील संचार में सर्वोच्च बचत दर है, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में असामान्य विश्वसनीयता प्राप्त की है तथा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या में कमी आई है।समकालीन भारतीय समाज की संरचना में नवीनता है। भारतीय समाज के मूल्यांकन के लिए किसी भी समाजशास्त्रीय मॉडलविकासशील, संघर्षवादी प्रकार्यात्मक आदि का प्रयोग करें, हम पाते हैं कि सामाजिक सम्बन्धों, संस्थाओं, मानदण्डों व मूल्यों में बदलाव आया है। आज भारतीय उतने रूढ़िवादी नहीं हैं तथा पूर्व के नैतिक मूल्यों व मानदण्डों की प्रति कट्टरवादी नहीं हैं। आज लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की बात करते हैं, वे अनुभवों की कामना करते हैं। वे दूसरे समाजों से सांस्कृतिक तत्वों को लेने में हिचक नहीं करते। उनमें नवीनता के लिए रचनात्मक इच्छा है। यही कारण है कि वर्तमान भारत में संयुक्त परिवार की जगह एकाकी परिवार तथा बहुविवाह की जगह एक विवाह की संख्या बढ़ रही है। विधवा पुनर्विवाह व अन्तर्जातीय विवाह बढ़ रहे हैं। स्त्रियो व अनुसूचित जातियों की स्थिति काफी बदली प्रतीत होती है। इस प्रकार एक नवीन संरचना का निर्माण हुआ है।आधुनिकता समकालीन भारतीय समाज की विशेषता है। आज एक ओर इसने लोकतन्त्र को स्वीकारा, लौकिकता को कबूला व नये मूल्यों व प्रतिमानों को अंगीकार किया, तो दूसरी ओर नवीनता, गतिशीलता, विकास व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सराहना की, जिसके फलस्वरूप भारतीयों की जीवन-शैली, आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था व सामाजिक व्यवस्था में आधुनिकता की छाप देखी जाती है। आज खान-पान, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा व सजावाट आदि में हम आधुनिक हुए हैं। आर्थिक क्षेत्र में उद्योग सम्बन्धी तकनीकी विकास व आधुनिकीकरण हुआ है।राजनीतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र का विकास संख्या बल की महत्ता व शासक-शासित में पारस्परिकता देखी जाती है। सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों व निम्न जातियों की स्थिति में समानता का विकास, शोषण का अन्त, एक-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, एकाकी परिवार आदि के विकास के रूप में देखा जा सकता है। समकालीन भारतीय समाज अनेक समस्याओं से ग्रसित है। धर्मनिरपेक्ष भारतीय समाज साम्प्रदायिकता से पीड़ित है। लोकतन्त्रीय भारतीय समाज में भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रवाद व भाषावाद की समस्या है। यहाँ बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या है जिसके परिणामस्वरूप अन्य सामाजिक समस्याओं का सृजन होता है। निर्धनता, बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता, भिक्षावृत्ति, अपराध, बाल-अपराध, वेश्यावृत्ति आत्महत्या आदि जैसी समस्याएँ इसी की कड़ी है|

सन्दर्भ ग्रन्थ

-Bierstedt. R. The Social Order, McGraw Hill Book Co. New York, 1957.

-Ginsberg, M.: Sociology. Oxford University Press, 1955 Herskovits, M. J. : Man and his Work, -Alfred A. Knof, New York, 1956.

-Maclver. R. M. and Page, C.H. Society-An Introductory Analysis, Mac Millan India Limited, Delhi, 1985,

-Piddington. R. An Introduction to Social Anthropology. Oliver and Boyd, London, 1952.

-Tylor, E. B.: Primitive Culture, John Murray, London, 1913.

-आहूजा, राम भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1995.

-दुबे, श्यामाचरण भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, 2001.

-मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ : भारतीय समाज व संस्कृति, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1979,

-सिंह, गोपी रमण प्रसाद, भारतीय समाज मिश्रा ट्रे कॉ., वाराणसी, 2009.